दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 28 अंक नं० 9

अध्यात्म-भजन

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

जानत क्यों नहि रे, हे नर आतमज्ञानी ।टेक ॥

रागद्वेष पुद्गल की संपति, निहचै शुद्ध निशानी ।जानत० ॥

जाय नरक पशु नर सुरगति में, यह परजाय विरानी ।
सिद्धसरूप सदा अविनाशी, मानत विरले प्रानी ।जानत० ॥

कियो न काहू हरै न कोई, गुरुशिख कौन कहानी ।
जनम मरनमलरहित विमल है, कीच बिना जिमि पानी ।जानत० ॥

सार पदारथ है तिहुंजगमें, नहि क्रोधो नहि मानी ।
'दौलत' सो घटमांहि विराजै, लखि हूजै शिवथानी ।जानत० ॥

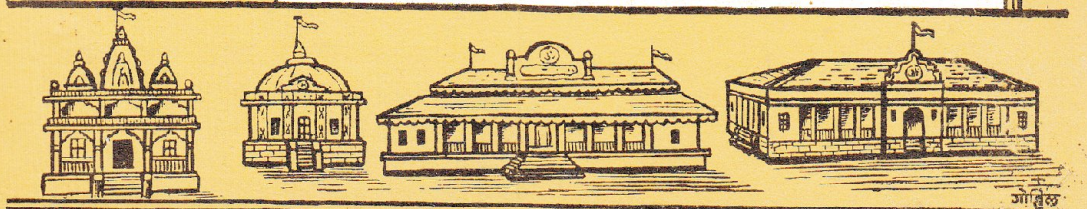

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

फरवरी : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (333) एक अंक 35 पैसा [पौष : 2499

सर्वज्ञ की प्रतीति के बिना धर्म का प्रारंभ नहीं होता

निर्मल भेदज्ञान द्वारा आत्मा का ज्ञान और उसमें लीनता प्रगट करके जिन्होंने बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह छोड़ा तथा शुक्लध्यान की श्रेणी के द्वारा चार घातिकर्मों को नष्ट करके केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय प्रगट किये—ऐसे सर्वज्ञदेव परमात्मा के वचन सत्यधर्म का निरूपण करनेवाले हैं; ऐसे सर्वज्ञ की पहचान करने से आत्मा के पूर्ण ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होती है और तभी से धर्म का प्रारंभ होता है। जो जीव सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं करता, उसको आत्मा की ही प्रतीति नहीं है, धर्म की ही प्रतीति नहीं है।

सर्वज्ञ के स्वरूप में जिसे संशय है, सर्वज्ञ की वाणी में जिसे सन्देह है, सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य कोई भी सच्चे धर्म के प्रणेता नहीं हैं, ऐसा जो नहीं पहचानते और विपरीत मार्ग में दौड़ लगाते हैं, वे जीव मिथ्यात्वरूपी महा पाप को बाँधनेवाले पाप जीव हैं—ऐसा कहकर धर्म के जिज्ञासुओं को सर्वप्रथम सर्वज्ञ और सर्वज्ञकथित मोक्षमार्ग की पहिचान कराने को कहा है।

अरे! तू ज्ञान की प्रतीति किये बिना धर्म कहाँ से करेगा? राग में स्थित रहने से सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं होती; रागादि सर्व दोषरहित निर्मल विज्ञानघनस्वभाव के लक्ष से राग से भिन्न होकर ज्ञानरूप-ज्ञानानुभूतिरूप होने से सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। ऐसे सर्वज्ञ की और ज्ञानस्वभाव की पहिचान करके उनके वचनानुसार धर्म की प्रवृत्ति होती है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

फरवरी : 1973 ☆ पौष : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 28 वाँ ☆ अंक : 9

स्वोन्मुखता में ही सुख है

अहा, आत्मा के परम आनंदरस का जहाँ स्वाद लिया, वहाँ जगत के राग का रस क्यों रहेगा ? परोन्मुख वृत्ति में तो क्लेश है, उसमें आनंद का लेश भी नहीं है। अपना स्वतत्त्व लक्ष में लेने से अनाकुल शांतरस का वेदन होता है; उसके समक्ष जगत का रस नीरस लगता है। चैतन्यरस का स्वाद लिया, वहाँ कषाय का रस कैसे अच्छा लगेगा ? अरे, चैतन्यतत्त्व के आनंद में शुभविकल्प का बोझ भी सहन नहीं होता। आँख में किरकिरी कदाचित् रह जाये, परंतु चैतन्य के शांतरस में कषाय का कण नहीं रह सकता, शुभराग का कण नहीं रह सकता। ऐसे चैतन्यरस के धाम अपने चैतन्यनिधान को हे मुमुक्षु ! तू एकाकी रहकर साधना, उसमें जगत के अन्य किसी की अपेक्षा मत रखना। जगत के पंथ से चैतन्य का पंथ निराला है। चैतन्य-सुख का मार्ग अपने ही अंतर में समाया है, अपनी परिणति अपने में ही एकाग्ररूप से परम आनंद का अनुभव करती है, आनंद के लिये कहीं बाहर जगत की ओर नहीं देखना पड़ता। तेरे अंतर में सुख का भंडार भरा है, वहाँ देखने से तुझे परम आनंदनिधान की प्राप्ति होगी।

चैतन्यरस से पूर्ण अनुभूति की गंभीर महिमा

[पौष कृष्णा 6-7, समयसार कलश 93-94 के प्रवचन से]

चैतन्य का अनुभव नय के पक्ष से रहित है। 'मैं शुद्ध हूँ, मैं ज्ञान हूँ' ऐसे शुद्धनय के विकल्प का पक्ष अर्थात् उसमें एकताबुद्धि होना, वह भी मिथ्यात्व है। 'ज्ञान कर्ता और विकल्प मेरा कर्म', ऐसी अज्ञानी की बुद्धि है। 'मैं शुद्ध हूँ' इसप्रकार अनुभव करने के विपरीत 'मैं शुद्ध हूँ', ऐसे विकल्प को ही स्वयं का कार्य मानकर अज्ञानी उसके वेदन में रुक गया है। जो विकल्प में स्थित है, वह भटका हुआ है। ज्ञानी तो विकल्प से भिन्न होकर ज्ञान को अंतर्मुख करके शुद्धनयरूप परिणति का कर्ता है, उस परिणमन में उसे कोई नयपक्ष नहीं है, विकल्प नहीं है, वह निर्विकल्प पक्षातिक्रांत है। भगवान आत्मा विकल्पवाला नहीं है, विकल्प से चलायमान होनेवाला नहीं है और विकल्प से वेदन में आनेवाला नहीं है। धर्मी जीव को ऐसा निर्विकल्प अचल विज्ञानघन आत्मा स्वयं के अनुभव में आता है; ऐसा आत्मा वह समयसार है, वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही आनंद है, जो कुछ है, वह सब यह एक ही है। धर्मी के ऐसे अनुभव में केवलज्ञान विज्ञानमय आनंदरस ही भरा है, उसमें विकल्परस नहीं है।

चैतन्यतत्त्व इतना अधिक महान है कि उसे विकल्पवाला कहना, वह कलंक है। अंतर्मुख निर्विकल्प पर्याय में आत्मा प्राप्त हुआ, वही सम्यग्दर्शन है। अज्ञानदशा में विकल्प को प्राप्त करता था, विकल्प का रस लेता था; अब ज्ञानदशा में चैतन्य की अनुभूति हुई, वह आत्मा का शृंगार है, उससे आत्मा शोभित होता है। विकल्प का शृंगार आत्मा को शोभा नहीं देता, वह तो कलंक है। आत्मा तो केवलज्ञान की बेल का कन्द है, उसमें तो अनुभूति के आनंद की फसल पकती है। सम्यग्दर्शन होने पर अनंत गुणों की फसल पकी है। धर्मात्मा जीव विकल्प को छोड़कर अंतर में चैतन्यभाव का आस्वादन करता हुआ निर्विकल्प भाव को आक्रमता है अर्थात् उसे शीघ्र प्राप्त करता है। अहो! निभृत-निश्चल पुरुष इस आत्मा का स्वयं आस्वादन करते हैं। जिसने विकल्पों की चिन्ता को दूर कर दिया है, और आत्मा में ज्ञान को निश्चल किया है, ऐसे निभृत पुरुषों को यह भगवान आत्मा स्व-संवेदनप्रत्यक्ष में स्वयं आस्वादन में आता है—ऐसी अनुभूति द्वारा आत्मा शोभित होता है। विकल्प में आत्मा का स्वाद नहीं आता। भाई!

तेरे चैतन्यघर में आनंदरस भरा है, उसे स्वयं आस्वाद में ले; विकल्प में आनंद लेने जायेगा तो नहीं मिलेगा। ऐसे आत्मा को सम्यग्दर्शन में अनुभव करना ही कर्तव्य है। धर्मी का कर्तव्य तो यही है। विज्ञानघन आत्मा के रस से भरपूर परमात्मा अनुभव में आया उसे ही सम्यग्दर्शन इत्यादि नामों से कहा जाता है। भाव में सम्यक्वेदन हुआ, तभी सम्यग्दर्शन इत्यादि नाम यथार्थ में कहलाता है। विकल्प की पामरता में भगवान आत्मा नहीं व्याप्त होता; वह तो अंतर की अनुभूति में प्रगट विराजता है, वह विज्ञानरस से भरपूर है, विज्ञानरस में ज्ञान-आनंद इत्यादि अनंत गुणों का रस समा जाता है। अधिक क्या कहें ? शब्दों से पार नहीं पाया जाता; जो कुछ है, वह सब इस अनुभूति में समा जाता है; चैतन्य के अनंत गुणों का वैभव निर्विकल्प अनुभूति में समा जाता है। प्राचीन पुराणपुरुष अनुभूति में प्रसिद्ध हुआ है। पवित्र स्वभावी पुराण पुरुष भगवान आत्मा अनादि-अनंत ऐसा का ऐसा है परंतु पर्याय में अनुभूति होने पर वह निर्मल पर्यायरूप से प्रसिद्ध हुआ; तभी उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, अनुभूति, शांति, परम आनंद इत्यादि नामों से पहचाना जाता है। अनुभूतिस्वरूप परिणमित उस एक आत्मा को ही इन सब नामों से कहा जाता है—ऐसा आत्मा ही समयसार है। अनुभव में धर्मी को वह सम्यक्रूप से दिखाई देता है, जानने में आता है, श्रद्धा में आता है, अतः वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, उससे भिन्न अन्य कोई सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्ज्ञान नहीं है। जो कुछ है, वह यह एक ही है। स्त्री हो, पुरुष हो अथवा नरक का नारकी हो, जिसने अंतर में ऐसा आत्म-अनुभव किया, वह पुराणपुरुष है, वह भगवान समयसार है, वही आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेते हुए, अनुभूतिस्वरूप परिणमित आत्मा से भिन्न कोई सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्ज्ञान नहीं है। वह आत्मा स्वयं के सम्यक्स्वरूप से स्वयं प्रसिद्ध हुआ है, वह स्वयं ही सम्यग्दर्शनरूप होकर परिणमित हुआ है। अहो ! सम्यग्दर्शन के गंभीर अनुभव की अलौकिक बात आचार्य भगवान ने इस समयसार में स्पष्ट की है; उसमें इस 144 वीं गाथा में तो सम्यग्दर्शन होने की अलौकिक रीति का वर्णन किया है और अमृतचंद्राचार्यदेव ने उस पर सात कलशों की रचना की है।

जिसप्रकार पानी, पानी के प्रवाह में मिल जाता है, उसीप्रकार जो चैतन्यपरिणति पहले विकल्पों में भ्रमण करती थी, वह अब चैतन्यस्वभाव में मिलकर मग्न हुई और चैतन्य स्वयं अपने विज्ञानरस में मिल गया; अब धर्मात्मा स्वयं को एक विज्ञानरसरूप से ही अनुभव करता

है। अहो! इस मर्यादित असंख्यप्रदेशी चैतन्यतत्त्व में अनंत अनंत गंभीरता भरी है; अनंत शक्ति का पिंड विज्ञानघन आत्मा, जिसकी अनंत महिमा की गंभीरता विकल्प में नहीं आ सकती, उसका धर्मात्मा जीव अनुभव करता है। अहो! चैतन्य के रसिकजन तो अपने आत्मा को निर्विकल्प चैतन्यरसरूप से ही अनुभव करते हैं। पानी का प्रवाह समुद्र में मिलता है, उसीप्रकार चैतन्यपरिणति का प्रवाह अंतर में मिलकर चिदानंद समुद्र में मग्न हुआ, तब आत्मा स्वयं के शांत-आनंद रस में लीन हुआ।

चैतन्य का मार्ग गहरा है, गंभीर है। विकल्पों में गंभीरता नहीं है, वह तो बाह्य में भ्रमण करता है और धर्मी की चैतन्यपरिणति तो विकल्प से पार, अनुभूति के गंभीर मार्ग में अंतर में मिलकर चैतन्य मुद्रा में एकाग्र होती है। आत्मा का मार्ग तो गंभीर और गहरा ही होता है। जिसके द्वारा अनादि के दु:ख से मुक्ति हो और अनंतकाल तक सुख मिले, उस मार्ग की क्या बात! उस अनुभूति की क्या बात! वचनातीत वस्तु को वचन से कितना कहें? अनुभव में लेने पर उसका पार पाया जाता है; वचन-विकल्पों से इसका पार नहीं पाया जाता। विवेक अर्थात् भेदज्ञान का मार्ग गहरा और गंभीर है, और उसका फल भी महान है। आचार्य भगवंतों का हृदय गहरा और गंभीर है; चैतन्य के अनुभव का रहस्य इस समयसार में भरा है... भव्य जीवों को निहाल कर दिया है। वाह रे वाह! सम्यग्दर्शन प्राप्त करने और भगवान के मार्ग की अफर रीति संतों ने प्रसिद्ध की है।

अरे भाई! तेरे शुद्धात्मा की ओर का विकल्प भी तुझे सम्यग्दर्शन नहीं देगा, तब बाह्य में दूसरा कौन देगा? तेरा विज्ञानघन आत्मा चैतन्य रस से भरपूर है, उसका रसिक होकर उसका स्वाद ले... वही सम्यग्दर्शन है। अन्य कोई सम्यग्दर्शन की रीति नहीं है।

शरीर अथवा पैसा तो दूर ही रहा, वह तो आत्मा में है ही नहीं, उसका कर्तृत्व भी आत्मा में नहीं है; और भीतर 'मैं शुद्धज्ञान हूँ' इत्यादि जो रागरूप विकल्प है, वह विकल्प भी चैतन्यरस से बाह्य है, उस विकल्प को जो स्वयं के कार्यरूप से करता है, वह जीव चैतन्यस्वरूप से भ्रष्ट है-अज्ञानी है। उस विकल्प से भी ज्ञान को भिन्न करके ज्ञानप्रवाह को अंतर में मिलाता हुआ धर्मी जीव स्वयं को एक चैतन्यरसरूप ही अनुभव करता है। धर्मी जीव चैतन्यरस का ही रसिक है; अन्य सबका रस उसे छूट गया है, राग का रस छूट गया है। ऐसे चैतन्य वीतराग रसरूप से आत्मा अनुभव में आता है, वह सत् है, वह कोई कल्पना नहीं है

विकल्प नहीं है परंतु धर्मी को ऐसा साक्षात् अनुभव वर्तता है। धर्मी को अपने ज्ञान में थोड़ा सा चैतन्यरस का अनुभव हो और थोड़ा सा राग के रस का अनुभव हो, इसप्रकार दो रसों का अनुभव नहीं है, परंतु मात्र एक विज्ञानघन चैतन्यरसरूप ही स्वयं को अपना आत्मा अनुभव में आता है, उसमें अन्य का अनुभव नहीं है। राग का अनुभव ज्ञान में नहीं है, ज्ञान से बाह्य है। अर्थात् ज्ञानी को आत्मा एक विज्ञानरसरूप ही अनुभव में आता है, और अज्ञानी को आत्मा एक रागरसरूप ही अनुभव में आता है, रागरहित चैतन्यरस का उसे भान नहीं है।

अहो! राग से भिन्न चैतन्यरस के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद जब चखा, तब धर्मी की परिणति अन्य सबसे मुड़कर अंतर में चैतन्यरस की ओर ही ढल जाती है। चैतन्यरस की ओर ही खिंचकर वह अपने चैतन्यस्वभाव में ही मग्न हुई। अहा! जिसने चैतन्यरस चखा है, वह राग के आकुल रस का स्वाद लेने नहीं जाता। वह राग को धर्म नहीं मानता। वीतराग भगवान का मार्ग तो ऐसा है। शुभराग से मिले ऐसा वीतराग का मार्ग नहीं है। भाई! वीतरागमार्ग जगत से और राग से भिन्न है, वह तो अंतर में है।

अहा! ऐसा वीतरागी मार्ग बतानेवाले, आत्मा का स्वरूप बतानेवाले वीतरागी देव-शास्त्र-गुरुओं के प्रति मुमुक्षु जीव को परम बहुमान और भक्ति का भाव आता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानना, वह मिथ्यात्व नहीं है; देव-गुरु के प्रति भाव शुभराग है; वह पुण्यबंध का कारण है, वह मिथ्यात्व नहीं है; परंतु देव-गुरु के प्रति शुभराग को धर्म मानना अथवा मोक्ष का यथार्थ कारण मानना-ऐसी विपरीत मान्यता मिथ्यात्व है। देव-शास्त्र-गुरु के बहुमान का शुभराग तो धर्मी सम्यग्दृष्टि को भी होता है; परंतु धर्मी अपने ज्ञान को उस राग से भिन्न ही अनुभव करता है, अतः उसे मिथ्यात्व नहीं है। अज्ञानी शुभराग का कर्ता होकर उसे ही अपना कार्य मानता है और उससे भिन्न ज्ञान को भूल जाता है। अतः उसे मिथ्यात्व है। शुभराग स्वयं मिथ्यात्व नहीं है परंतु राग और ज्ञान की एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्व है।

भाई! राग तेरे ज्ञानादि का कारण नहीं है। राग, स्वभाव की वस्तु नहीं है, उसका कर्तृत्व आत्मा के ज्ञानस्वभाव में नहीं है। विकल्प, वह अज्ञानी का कार्य है; ज्ञानी को विकल्प ज्ञेयरूप है, ज्ञान के कार्यरूप नहीं है। अतः कहा है कि विकल्प का कर्ता अज्ञानी है। ज्ञानी तो ज्ञानभाव का ही कर्ता है, वह विकल्प का भिन्नरूप से ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। ज्ञानस्वभाव की अनुभूति द्वारा ऐसी अपूर्व ज्ञानदशा प्रगट होती है और तब वह जीव विकल्पों का अकर्ता होकर ज्ञानभावरूप से मोक्षमार्ग में शोभित होता है।●

धर्मात्मा की अनुभूति का वर्णन

[धर्मी के अंतर में समयसार उत्कीर्ण है]

पौष कृष्णा अष्टमी को आचार्यश्री कुन्दकुन्द प्रभु की आचार्यपद प्रतिष्ठा का मंगल दिन आनंदपूर्वक मनाया गया। उस दिन पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से इटली की मशीन द्वारा श्री समयसार उत्कीर्ण करना प्रारंभ हुआ। अजित प्रेस के प्रांगण में बँधे मंडप में पूज्य गुरुदेव का जो भावविभोर प्रवचन हुआ था, वह पढ़कर मुमुक्षुओं को आनंद होगा।

★

आज कुन्दकुन्दाचार्यदेव की आचार्यपदवी का महान दिवस है। वे आत्मा के आनंद में झूलते हुए महान संते थे। दो हजार वर्ष पहले वे यहीं मद्रास के निकट पोन्नूर पर्वत पर विराजते थे। वहाँ से विदेहक्षेत्र में सीमंधर परमात्मा के पास गये थे और आठ दिन रहकर भगवान की वाणी सुनी थी, उनकी आचार्यपद पर प्रतिष्ठा का आज दिन है। उन्होंने इन समयसारादि महान परमागमों की रचना करके उपकार किया है। मंगल के श्लोक में महावीर भगवान और गौतम गणधर के पश्चात् तीसरा कुन्दकुन्दाचार्यदेव का नाम आता है, 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो'—ऐसे मंगलरूप आचार्यदेव की आचार्यपदवी का आज महान दिन है और अपने यहाँ भी आज (मशीन से संगमरमर में) श्री समयसार उत्कीर्ण करने का मंगल प्रारंभ हुआ है।

आज पौष कृष्णा अष्टमी और बुधवार है। बुध अर्थात् ज्ञान, ज्ञान का वार, अर्थात् ज्ञान की परिणति का अवसर, उस ज्ञान को दिखलानेवाला यह समयसार शास्त्र है। आत्मा की अनुभवदशा में झूलते-झूलते शास्त्र-रचना का विकल्प आया और समयसारादि शास्त्रों की रचना हो गई। उसमें विकल्प का अथवा वाणी का कर्तृत्व उनके ज्ञान में नहीं था, ज्ञान के स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य में विकल्प और वाणी परज्ञेयरूप ज्ञात हो जाती है।

सम्यग्दृष्टि स्वयं ज्ञानरूप परिणमित हुआ है, उसमें विकल्प का अथवा वचन का कर्तृत्व नहीं है; सम्यग्दर्शन में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद का वेदन होता है, और उस

अंश द्वारा 'मेरा संपूर्ण आत्मा ऐसा आनंदमूर्ति-चैतन्यमूर्ति है' ऐसा धर्मी को भान होता है। इसप्रकार स्वभाव में एकता और राग से भिन्नता के अनुभव सहित आत्मा की जो प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। ऐसा स्वरूप आचार्यदेव ने आत्मा के वैभव से इस समयसार में दिखलाया है। धर्मी को राग के काल में उस राग का ज्ञान वर्तता है, इसलिये धर्मी जीव स्वपरप्रकाशक ज्ञानरूप से वर्तता है। उसके ज्ञान में अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप आत्मा का अनुभव वर्तता है। अहा, जिसमें चैतन्यभगवान का पूर्णानंदरूप से अनुभव हुआ, उस सम्यग्दर्शन की क्या बात! लोगों को सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है, उसकी खबर नहीं है।

राग के काल में भी धर्मी तो स्वपरप्रकाशक ज्ञानरूप से ही वर्तता है, विकल्परूप से नहीं वर्तता। विकल्प की अपेक्षा रखे बिना स्वयं ज्ञानरूप से वर्तता है। विकल्प ज्ञात हुआ, तब 'विकल्प का ज्ञान' कहना वह व्यवहार है, सचमुच ज्ञान में विकल्प की अपेक्षा नहीं है, ज्ञानी विकल्प का कर्ता नहीं है। यह बात 95 वें कलश में आचार्यदेव कहते हैं:—

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम्।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति॥95॥

जो ज्ञान और विकल्प की भिन्नता को नहीं जानता है, ऐसा अज्ञानी जीव ही विकल्प का कर्ता है और विकल्प उसका कर्म है। आत्मा को विकल्पवाला ही अनुभव करनेवाले जीव को उस विकल्प का कर्ताकर्मपना कभी नष्ट नहीं होता। ज्ञान होने के पश्चात् विकल्प का कर्तृत्व नहीं रहता। ज्ञानस्वभाव पर जिसकी दृष्टि नहीं है, विकल्प पर ही जिसकी दृष्टि है, वही जीव विकल्प का कर्ता है। ज्ञान के अनुभवरूप परिणमनेवाला जीव विकल्प का कर्ता कभी नहीं होता। अज्ञानभाव से ही जीव को विकल्प का कर्तापना है और विकल्प ही अज्ञानी का कर्म है। ज्ञान में विकल्प के साथ कर्ताकर्मपना छूट जाता है। ऐसे ज्ञानस्वभाव का जिसने अनुभव किया, उसने परमागम को अपने आत्मा में उत्कीर्ण किया। जिसने आत्मा के आनंद का स्वाद नहीं चखा है, वही विकल्प का कर्ता होकर उसको करता है; परंतु अज्ञानी को विकल्प का कर्तृत्व उस अज्ञानपर्याय में ही है। द्रव्य-गुणस्वभाव में विकल्प का कर्तृत्व नहीं है अथवा कर्म आदि दूसरी वस्तु विकल्प की कर्ता नहीं है और द्रव्यस्वभाव पर जिसकी दृष्टि है, उसे तो ज्ञानपर्याय में विकल्प का कर्तृत्व नहीं है, उसे तो ज्ञानभाव ही कर्तृत्व है।

शुभाशुभभाव के काल में अज्ञानी उस भावरूप ही स्वयं को अनुभवता हुआ उसका ही कर्ता होता है; परंतु उसके अतिरिक्त बाह्य में शरीरादि की क्रिया में तो उसका कर्तृत्व नहीं है

और ज्ञानी को तो उस शुभाशुभभाव के काल में ही उससे भिन्न ज्ञान का वेदन वर्तता है, उसमें वह ज्ञान-आनंद के स्वाद का ही वेदन करता है, उसको शुभाशुभराग का कर्तृत्व नहीं है और बाह्य की क्रिया का कर्तृत्व भी नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा के वेदन बिना अनंत बार शुभक्रियायें करके स्वर्ग में जाकर भी जीव ने दु:ख ही प्राप्त किया; परंतु शुभराग द्वारा उसने लेशमात्र भी सुख नहीं पाया, क्योंकि आत्मा के आनंद की उसे खबर नहीं है। शुभ का परिणाम तो दु:खरूप है, जीव में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है और उससे पार ज्ञानस्वभावरूप आत्मा आनंदरूप है। अरे, ऐसे आत्मा को लक्ष में तो लो! वीतरागदेव द्वारा कहे गये आत्मतत्त्व को पहिचाने बिना भव का अंत नहीं आता।

शुभाशुभ विकल्प को ही अपना स्वरूप मानकर जो रुक गया है, वह जीव विकल्प सहित है और उसे ही विकल्प के साथ कर्ताकर्मपना है, अज्ञान में विकल्प का कर्ता-कर्मपना कभी नहीं छूटता। यहाँ तो ज्ञान-स्वभाव के अनुभव द्वारा वह कर्ताकर्मपना किसप्रकार छूट जाये, यह बात आचार्य-भगवान ने इस समयसार में समझायी है। ज्ञान में विकल्प का कर्तृत्व किंचित् भी भासित नहीं होता। विकल्प का कोई अंश ज्ञान में नहीं है, अत: ज्ञानी को विकल्प का कर्तृत्व किंचित् भी नहीं है। ज्ञान की परिणति और विकल्प को करनेरूप परिणति दोनों एकसाथ कभी नहीं होते। विकल्प को करनेरूप अज्ञानक्रिया में ज्ञानक्रिया नहीं होती और ज्ञान के अनुभवरूप ज्ञानक्रिया में विकल्प को करनेरूप करोतिक्रिया कभी नहीं होती। अहो! धर्मी को जहाँ आनंदमूर्ति आत्मा का अनुभव अंतर में हुआ है, वहाँ अब राग का कर्तृत्व कैसा? सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में भगवान की प्रतिष्ठा हुई, आत्मा आनंद का स्वाद लेकर ज्ञानरूप हुआ, वहाँ अब राग नहीं रह सकता। उसकी दृष्टि में तो आनंदमय आत्मा विराजता है।

देखो, आज तो समयसार उत्कीर्ण होने का प्रारंभ हुआ और यहाँ अंतर में समयसार की प्रतिष्ठा करने की बात है। धर्मी की परिणति में राग का कर्तृत्व नहीं है, राग का ज्ञान भले हो, परंतु वह ज्ञान राग से भिन्न पृथक् वर्तता है। ऐसा मोक्ष का मार्ग है। भाई! चौरासी लाख योनि में अवतार कर-करके अज्ञान से तू दु:खी हुआ, उससे मुक्ति किसप्रकार हो, उसकी यह बात है।

चैतन्यप्रभु के ऊपर जिसकी दृष्टि है, उसे वीतरागी आनंद का वेदन होता है और उसी का यह कर्ता है। साथ में राग होता है, उसका वह कर्ता नहीं है, भले दसवें गुणस्थान तक राग हो, परंतु सम्यक्त्वी की ज्ञानपर्याय में वह राग नहीं है, ज्ञान से तो वह भिन्न ही है। जिसप्रकार जगत में छह द्रव्य हैं, वे सब पृथक्-पृथक् हैं; उसीप्रकार धर्मी को ज्ञान और राग भी भिन्न-

भिन्न वर्तते हैं। उनमें ज्ञान के कर्तारूप से धर्मी वर्तता है। राग उसके ज्ञानरूप से नहीं वर्तता परंतु ज्ञान से भिन्न ही वर्तता है। अज्ञानी तो ज्ञान और राग सर्व को एकमेक अनुभव करता है, राग से भिन्न ज्ञान की उसे खबर नहीं है, ज्ञान के स्वाद को वह जानता नहीं है, अत: उसको अज्ञान में विकल्प का कर्ताकर्मपना कभी नहीं छूटता और ज्ञानी को ज्ञानभाव में विकल्प का कर्ताकर्मपना कभी नहीं होता। अहो! सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा, सम्यग्दर्शन अर्थात् समयसार, उसमें राग का कर्तृत्व किसप्रकार हो? चौथे गुणस्थान में जो राग है, उस राग का कर्तृत्व सम्यक्त्वी की ज्ञानपर्याय में नहीं है, चौथे गुणस्थान में भी धर्मी जीव अपने ज्ञानभाव को ही करता है। जैसे छह द्रव्य भिन्न हैं, उसीप्रकार ज्ञान और राग भिन्न हैं। राग, राग के स्थान में रहा, सम्यक्त्वी की ज्ञान-आनंद पर्याय में वह नहीं है। समयसार की तो रचना ही कोई अलौकिक है, उसमें सब आ जाता है।

अहो! इस समयसार में तो आत्मा के अनुभव का रहस्य खोला है। समयसार अर्थात् अजोड़ जगतचक्षु! समयसार तो केवली प्रभु का कथन है।

अहा! चैतन्य के वीतरागी आनंद के अनुभव का कार्य करनेवाले धर्मी जीव राग का कार्य कैसे करें? निजात्मरूप जो भगवान है, उसकी परम महिमा का अनुभव करता हुआ जीव राग से भिन्न ही है। धर्मी के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों चैतन्यमय हैं, उसमें कोई व्यवहार के विकल्प या राग नहीं है। स्वभाव का आश्रय करके धर्मी ज्ञान-आनंदरूप परिणमित हुआ, उसमें कोई राग की-विकल्प की अपेक्षा नहीं है। अन्य किसी कारक की अपेक्षा रखे बिना धर्मी अपने स्वाधीन षट्कारक से ज्ञान-आनंदरूप परिणमता है। अहो! वस्तुस्वरूप में ऐसा निरपेक्षपना है।

भगवान! तेरी बलिहारी है। ऐसी आत्मा की बात विदेह में से कुन्दकुन्दाचार्यदेव लाये... और भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को इस समयसार द्वारा प्रदान की। समयसार में केवली प्रभु की वाणी है, उसकी एक-एक गाथा में ज्ञान का महान समुद्र भरा है।

ज्ञान स्वसन्मुख होकर राग से भिन्नरूप से प्रवृत्त हुआ, वही ज्ञानी का कार्य है, विकल्प अथवा शास्त्र की शब्द-रचना, वह ज्ञानी का कार्य नहीं है। ज्ञान में राग का कार्य नहीं होता। ज्ञान में राग का कार्य है ही नहीं, तो वह राग ज्ञान का कारण कैसे हो? ज्ञान का कारण-कार्य ज्ञानरूप ही होता है। मात्र ज्ञान-दर्शन-आनंदरूप निर्मलभाव ही धर्मी का कार्य है; अन्य कोई उसका कार्य नहीं है। अज्ञानी को विकल्प का कार्य है, उसे अन्य कोई कार्य नहीं है। विकल्प

को जिसने अपना कार्य माना, विकल्प को ज्ञान का साधन माना 'विकल्पवाला आत्मा है' ऐसा जो अनुभव करता है, उस जीव को राग का कर्ताकर्मपना कहाँ से छूटे? वह राग सहित ही स्वयं को अनुभव करता है और राग से भिन्न चेतनस्वभाव का जो अनुभव नहीं करता, उसे रागादि का कर्तापना कभी नहीं छूटता अर्थात् संसारभ्रमण नहीं छूटता क्योंकि आत्मा को रागादिस्वरूप मानना, वही संसार का बीज है। धर्मी को रागादि से भिन्न ज्ञान के अनुभव द्वारा संसार का बीज नष्ट हो गया है। राग तो दसवें गुणस्थान तक होता है परंतु धर्मी का ज्ञान, राग सहित नहीं है; राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप रूप से धर्मी स्वयं को अनुभव करता है। ऐसा अनुभव, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वही धर्मी का कार्य है।

ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि होने पर धर्मी को निर्मलपर्याय प्रगट हुई, धर्मी उस निर्मलपर्याय को और उस काल के रागादि को जानता है परंतु वह निर्मल ज्ञानभाव और रागभाव ये दोनों दो रूप से वर्तते हैं अर्थात् भिन्नरूप से वर्तते हैं, इसलिये उनमें कर्ताकर्मपना नहीं है। इसप्रकार धर्मी का ज्ञान विकल्पसहित नहीं है, विकल्प का कर्ता नहीं है, ज्ञानसत्ता विकल्प से भिन्न है। राग के काल में रागवाला ही आत्मा जिसको भासित होता है, और राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप जिसको भासित नहीं होता, वह जीव विकल्पसहित है, वह विकल्प का कर्ता है। विकल्प तो दोष है, स्वयं को दोषवाला अनुभव करना, वह संसार का मूल है। दोष से भिन्न, राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करना, वह मोक्ष का मूल है। अंतर में भगवानपना भरा है, उसमें से यह प्रगट होता है। राग में से भगवानपना नहीं आता।

जो करता है, वह केवल करता ही है; अर्थात् जो रागादि को अज्ञानभाव से करता ही है, उसे राग से भिन्न ज्ञानभाव का परिणमन नहीं है, और जो जानता है अर्थात् जाननेरूप परिणमता है, वह केवल ज्ञानभाव को ही करता है, वह राग को नहीं करता। इसप्रकार रागक्रिया में और ज्ञानक्रिया में अत्यंत भिन्नपना है।

अहो! आत्मा का स्वयं का ज्ञायकस्वभाव है, उसमें राग को करने का स्वभाव नहीं है; तो भी राग में एकता मानकर जो उसका कर्ता होता है, वह ज्ञानस्वभाव को नहीं जानता। अरे, ज्ञानस्वभावी पदार्थ, राग को कैसे करे? ज्ञानस्वभाव में तन्मय होकर आनंदरूप जो परिणमित हुआ, उसकी ज्ञान-आनंदमय परिणति में राग का कर्तृत्व नहीं रहता। अनंतकाल से नहीं किया ऐसे सम्यग्दर्शन को जो करता है-उसकी ऐसी दशा होती है, वह स्वयं को ज्ञानभावरूप ही वेदन करता है। (—शेष अगले अंक में)

अपूर्व आत्मशांति के अनुभव की सर्व सामग्री आत्मा में है।

आनंदमय आत्मसंपदा का अनुभव करना यही धर्मात्मा का धंधा है।

[नियमसार समाधि अधिकार : कार्तिक सुद 7, संवत् 2499]

धर्मात्मा संत कहते हैं कि अहो, चैतन्य की शांति का अनुभव करना, वह हमारा विषय है। अहा, आनंद संपदा का संपूर्ण समुद्र आत्मा, उसमें से एक बिंदु भी प्रगट होने पर जो आनंद अनुभव किया जाता है, वैसा आनंद जगत के किसी वैभव में नहीं है। ऐसा आनंदस्वरूप आत्मा स्वयं है, इसलिये उसका अनुभव हो सकता है।

अहो, जो चैतन्य परमतत्त्व मेरे अंतर में विराज रहा है, वह मुझे समाधिगम्य है। किसी अचिंत्य विकल्पातीत समाधि द्वारा उत्तम आत्मा के हृदय में अर्थात् सम्यग्दृष्टि के अंतर में वह परम तत्त्व स्फुरायमान होता है। सहज आत्मसंपदा सहित यह परमात्मतत्त्व समाधि के साथ ही रहता है। राग का विकल्प तो असमाधि है, उसमें चैतन्य की संपदा नहीं है, ऐसे आत्मतत्त्व का ज्ञाता धर्मात्मा कहता है कि अहो, ऐसा परम तत्त्व हमारी समाधि का विषय होते हुए भी, उसमें स्वसन्मुख उपयोग युक्त किये बिना उसकी निर्विकल्प शांति का अनुभव नहीं होता। वचन-विकल्पों में लक्ष जाये, उतनी असमाधि है। वचन-विकल्प से पार होकर निर्विकल्प चैतन्यध्यान में कोई परम अद्भुत आनंद अनुभव होता है... वह सच्ची समाधि है। इसप्रकार आत्मा का अनुभव करनेवाला जीव ही यथार्थतया उत्तम आत्मा है। बाह्य में अत्यंत वैभव हो, अथवा शुभराग करता हो, उसे उत्तम नहीं कहते। चैतन्य की आनंदसंपदा के समक्ष जगत की संपत्ति का क्या मूल्य ? आनंदसंपदा का संपूर्ण समुद्र आत्मा है, उसमें से एक बिंदु भी प्रगट होने पर जो आनंद का अनुभव होता है, उतना आनंद जगत के किसी वैभव में नहीं है। ऐसा

आनंदस्वरूप आत्मा स्वयं है अर्थात् उसका अनुभव हो सकता है। उसे शोध करने के लिये कहीं दूर नहीं जाना पड़ता है।

धर्मात्मा संत कहते हैं कि अहो! चैतन्य की शांति का अनुभव करना, वह हमारा विषय है। जिसप्रकार कोई जवाहरात का व्यापार करता है, कोई कोयले का व्यापार करता है, कोई अनाज का व्यापार करता है; इसप्रकार वह उनका विषय है; उसीप्रकार धर्मात्मा को किस वस्तु का व्यापार है? तो कहते हैं कि आत्मा की शांति का अनुभव-ही हमारा विषय है। शास्त्र-रचना का अथवा उपदेश का विकल्प हुआ, उसे भिन्न रखकर कहते हैं कि अरे, विकल्प का अनुभव हमारा विषय नहीं है, हमारा विषय तो चैतन्य की शांति का अनुभव करना है। बाह्य विषय अथवा रागादिभाव, वह हमारा विषय नहीं है, हमारी आत्मसंपदा के अनुभव से वे बाहर हैं।

अरे! ऐसी चैतन्यसंपदा को एकबार लक्ष में तो लो! उसमें लक्ष को युक्त करने पर महा आनंदरूप समाधि होगी। अहा, आत्मा में उपयोग युक्त करने पर कोई अद्‌भुत शांति का अनुभव होता है, उसकी क्या बात!

आनंद के अनुभव की विशेष सामग्री

ऐसी अपूर्व शांति के अनुभव के लिये धर्मी के अंतर में कैसी सामग्री है? उस विशेष सामग्री को बतलाते हैं। (नियमसार, गाथा 123) धर्मात्मा जीव की शुद्धपरिणति ही उसकी ध्यान-सामग्री है, उसके द्वारा वह धर्मात्मा आत्मध्यान करता हुआ समाधि के परम वीतराग सुख का अनुभव करता है। यह धर्मात्मा के अंतर की विशेष सामग्री है। भाई, तेरी सामग्री तो तुझमें ही है; फिर भी बाह्य सामग्री शोध-शोधकर क्यों व्यर्थ में व्यग्र और खेदखिन्न होता है? बाह्य सामग्री में तुझे किंचित् भी सुख नहीं मिलेगा। स्वयमेव सुखरूप परिणमित आत्मा की बाह्य सामग्री अकिंचित्कर है; बाह्य सामग्री में से सुख खोजनेवाले जीव व्यर्थ ही परतंत्र होकर दु:खी होते हैं—यह बात प्रवचनसार की 16वीं गाथा में कही है।

इंद्रियों से पार चैतन्यस्वरूप आत्मा की आराधना में तत्परता, उसमें उपयोग की सन्मुखता, वही संयम, नियम, अध्यात्मतप और ध्यान है;—ऐसी विशेष सामग्री द्वारा जो स्वयं के आत्मा का ध्यान करता है, वह जीव निर्विकल्प समाधि के परम सुख का अनुभव करता है। परिणति अंतरस्वरूप में लीन हुई, अर्थात् वह अंतर की गहराई में उतर गई, ऐसा कहा जाता है।

विकल्प द्वारा चैतन्य में प्रवेश ही नहीं होता, विकल्पातीत चैतन्यपरिणति द्वारा अंतर के स्वभाव का अनुभव हुआ, उसे 'गहराई—अधिक गहराई' कहा जाता है। बाह्य झुकाव छोड़कर अंतर के स्वभाव में जो जीव गहराई तक उतरा.... उसी ने आनंद के समुद्र में डुबकी लगाई है।

अहो, ऐसी अंतर्मुख परिणति के अतिरिक्त सर्व बाह्य शुभाशुभभाव आडंबर है; चैतन्यभाव वह सहज भाव है, उसमें कोई परभाव का आडंबर नहीं है। शुभराग, वह आत्मा का सहजभाव नहीं है, वह तो पराश्रय से उत्पन्न हुआ आडंबर है। शुभाशुभरूप बाह्य क्रियाकांड का आधार नहीं है, आत्मा तो रागरहित अंत:क्रिया का आधार है। ऐसे आत्मस्वभाव को जानकर उसके सन्मुख हुई विशेष परिणति, वह धर्मध्यान है; वही आत्मध्यान करने की सच्ची सामग्री है। अन्य सर्व सामग्री (शुभक्रियाएँ) तो मात्र (बाह्य) साधन हैं, परमार्थ से तो वह आडंबर है, उससे पार आत्मा की अनुभूति है। ऐसी अनुभूति में ध्याता-ध्यान-ध्येय अथवा उसका फल, ऐसे भेद के विकल्प नहीं हैं, वह तो विकल्पों से पार अंतर्मुखाकार आत्मा का ही अवलंबन करनेवाली है। ध्रुव, वह ध्येय और पर्याय, वह ध्याता—ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है, ऐसे अंतर्मुखाकार परमतत्त्व में उपयोग की स्थिरता, वह परम ध्यान है-ऐसी स्वयं शुद्ध परिणति, वही अंतर्मुख परम सामग्री है;—ऐसी विशेष सामग्री द्वारा जो धर्मात्मा अपने परमानंदमय तत्त्व का ध्यान करता है, उस जीव को परम समाधि है। ऐसी समाधिरूप परिणमित जीव को बाह्य साधन के अवलंबन की व्यग्रता नहीं है। अरे जीव! तेरे आत्मा के अतिरिक्त बाह्य में अन्य भगवान का अवलंबन भी तेरी समाधि में कहाँ है? दूसरे का अवलंबन लेने जायेगा तो तुझे असमाधि होगी। तेरा आत्मा अपूर्ण नहीं है, जिससे किसी दूसरे का अवलंबन लेना पड़े। स्वभाव की सामग्री में परिपूर्ण तेरा आत्मा है, उसके अवलंबन में श्रद्धा-ज्ञान-संयम-तप-ध्यान आदि सबका समाविष्ट है। संपूर्ण मोक्षमार्ग आत्मा का ही अवलंबन है। ऐसे निज आत्मा के अवलंबन बिना सर्व व्यर्थ है, क्योंकि वह संसार का ही कारण है।

अहो, अंतर्मुख होकर चैतन्य की सहज निर्विकल्प समाधि में जो लीन है, और द्वैत के विकल्पजाल से जो मुक्त हैं—उन संतों को मैं नमस्कार करता हूँ; नमस्कार करता हूँ अर्थात् मैं भी ऐसे ही आत्मा को मेरा ध्येय बनाकर उस ओर झुकता हूँ; भेद के विकल्पों की ओर मैं नहीं झुकता हूँ। चैतन्य के निर्विकल्प ध्यान में स्थित संतों के प्रति अपना प्रमोद प्रगट करता हुआ मैं उनको नमस्कार करता हूँ।●●

सिद्ध भगवंतों का अचिंत्य सुख

शुद्धोपयोग के फलरूप वह सुख अत्यंत प्रशंसनीय है।

[प्रवचनसार गाथा 13 पर प्रवचन : जयपुर जेठ शुक्ला 4-5 संवत् 2027]

शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान को साधकर महावीर आदि भगवंतों ने अपूर्व महा आनंदमय सिद्धपद को प्राप्त किया... अहो, इस अतीन्द्रियसुख की क्या बात! भगवंतों ने सुख के मार्ग का जगत को उपदेश दिया और वही मार्ग कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी संतों ने परमागम में प्रसिद्ध किया है।

आत्मा के परम सुख के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कर्तव्य है, यह तीनों शुद्धोपयोग में समाविष्ट हैं। अतः रागादि के साथ की एकता तोड़कर ज्ञानानंदस्वरूप में एकता करना, वह प्रथम कर्तव्य है। ऐसा करते ही अंतर में से परम शांति का स्रोत प्रवाहित होता है।

सम्यग्दर्शन उपरांत चारित्रदशा में निर्विकल्प शुद्धोपयोग अनंत आनंदरूप केवलज्ञान का कारण है। अहो! शुद्धोपयोग द्वारा जिनको केवलज्ञान प्रगट हुआ है, उनके परम सुख की क्या बात? वह सुख आत्मा में से ही उत्पन्न है। इन्द्रियविषयों से पार है, अनुपम है, अनंत है और विच्छेद रहित है। अहो! आत्मा के ऐसे सुख की प्रतीति करते ही आत्मा के स्वभाव की प्रतीति होती है और बाह्य सर्व सुखबुद्धि नष्ट हो जाती है।

देखो, ऐसे सुख का कारण शुद्धोपयोग ही है, अन्य कोई साधन नहीं है। शुद्धोपयोग में अपने ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है, अतः अपने असाधारण ज्ञानस्वभाव को ही कारणरूप से अंगीकार करने पर केवलज्ञान और परमसुख होता है।

आत्मस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी को सुख का साधन मानना, वह तो संसारतत्त्व है। मिथ्यात्व तो संसारतत्त्व ही है। कोई जीव भले ही पंचमहाव्रतादि पालता हो तो भी जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ संसारतत्त्व ही है; वह जीव दुःखी ही है।

आत्मा का अतीन्द्रिय सुख ही सच्चा सुख है; और शुभाशुभ उपयोग को छोड़ने पर ऐसा सुख प्राप्त होता है। यदि शुभाशुभ को ही कर्तव्य माने तो कभी आत्मसुख प्राप्त नहीं कर सकता। शुभाशुभ को छोड़कर और शुद्धोपयोग को आत्मसात् करके केवली भगवंतों ने अनंत आत्मसुख को प्राप्त किया है। उस शुद्धोपयोग के फल की प्रशंसा करके आचार्यदेव भव्य जीवों को उस शुद्धोपयोग के फल में प्रोत्साहित करते हैं... अहो! ऐसे सुख की बात सुनकर भी भव्य जीव प्रोत्साहित होते हैं कि वाह! ऐसे सुख के कारणरूप शुद्धोपयोग ही हमारा कर्तव्य है। शुद्धोपयोग द्वारा उत्पन्न ऐसा अतीन्द्रिय परम सुख ही हमें प्रार्थनीय है; इसके अतिरिक्त संसार में अन्य कोई शुभ-पुण्य अथवा उसके फलरूप स्वर्गादिक की भी इच्छा करने योग्य नहीं है। क्योंकि उसमें कहीं आत्मा का सुख नहीं है; पुण्य में मग्न जीव आकुलता की अग्नि में जल रहा है, और दु:खी है। सुख तो शुद्धोपयोगी जीव ही हैं।

शुद्धोपयोगरूप परिणत आत्मा ही धर्म है; वही सुखी है; वही केवलज्ञान और मोक्ष को साधता है। उसकी प्राप्ति के लिये चेतना से भिन्न ऐसे अशुभ अथवा शुभ सर्व कषायभाव छोड़नेयोग्य हैं।

मैं तो जगत का साक्षी स्वयं सुख का पिण्ड हूँ। उसमें आकुलता कैसी? मैं सुख के अनुभव के लिये किसी अन्य को ग्रहण करूँ अथवा किसी को छोड़ूँ—ऐसा मेरे स्वरूप में है ही नहीं। बाह्यपदार्थ तो सदा मुझसे पृथक् भिन्न ही हैं, उनका ग्रहण अथवा त्याग मुझमें नहीं है। ज्ञान और सुखस्वरूप मेरा आत्मा है, उसमें उपयोग की एकाग्रता होने पर शुभाशुभ भी छूट गया और परम वीतरागसुख का अनुभव हुआ। आचार्यदेव स्वयं ऐसे शुद्धोपयोगरूप होकर कहते हैं कि अहो! ऐसी दशा ही परम प्रशंसनीय है।

मुनिधर्म तो शुद्धोपयोगरूप है; रागरूप नहीं है। पंडित श्री टोडरमलजी मुनि का स्वरूप बतलाते हुए लिखते हैं कि—जो विरागी होकर समस्त परिग्रह का त्याग करके शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अंतर में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं... ऐसी मुनिदशा है, ऐसी मुनिदशा के बिना मोक्ष नहीं होता। अहा! धन्य उनका अवतार! धन्य उनका जीवन! वे मुनि परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं धारण करते अर्थात् शरीरादि पर की क्रिया को अपनी नहीं मानते हैं, अपने ज्ञानादिक स्वभाव को ही अपना मानते हैं। रागादिक परभावों में ममत्व

नहीं करते। शुभराग होता है, उसे भी हेय जानकर छोड़ना चाहते हैं। अशुभ और शुभ, दोनों आकुलता का अंगारा है। चैतन्य की शांति तो शुद्धोपयोग में ही है।

अहो! आत्मा का सुख राग से पार है, उसका स्वाद जीव ने पूर्व में अनादि संसार में कभी नहीं चखा। सम्यग्दर्शन हुआ, तब आत्मा के अनुभव में उस अपूर्व आह्लादरूप सुख का स्वाद पहली बार चखा। तत्पश्चात्, उसमें लीनतारूप शुद्धोपयोग में केवलज्ञान होने पर उस सुख का अतिशय रूप से अनुभव हुआ, संपूर्ण सुख का समुद्र ही उल्लसित हुआ। उस सुख की क्या बात! कुन्दकुन्दस्वामी जैसे संत जिसकी अत्यंत प्रशंसा करते हैं, वैसा सुख आत्मा के स्वभाव में भरा है। अरे, प्रसन्नता से उसकी प्रतीति तो करो। प्रतीति करने पर वह प्रगट होगा। नास्ति में से अस्ति कहाँ से होगी? सत् है—उसकी अस्ति का स्वीकार करने पर वह अनुभव में आता है और सुखमय आनंद सुप्रभात प्रस्फुटित होकर उदित होता है।

धर्मात्मा ऐसे अपने स्वभावसुख की प्रतीति करके उसमें इसप्रकार प्रवेश कर गया है कि उसमें से अब बाहर निकलना उसे अच्छा नहीं लगता; शुभ में आना पड़े तो भी दुःख लगता है, वहाँ अशुभ की तो क्या बात! अरे, कहाँ चैतन्य के परम आह्लाद की शांति और कहाँ शुभाशुभराग की आकुलता! अतीन्द्रिय आनंद का पाक आत्मा के क्षेत्र में ही पकता है। अतीन्द्रिय आनंद के पकने का स्थान यह चैतन्यक्षेत्र ही है, अन्यत्र वह नहीं पकता। पहले उसकी श्रद्धा के बीज बोओ तो परम आनंद का पाक होगा—भाई, यह सब तुझमें ही है; तेरा आत्मा ही ऐसा सुखस्वरूप है... तू स्वयं परमशांति का पिण्डरूप देख... अनुभव कर... वही सच्चा सुख है, वही प्रशंसनीय और प्रार्थनीय है।

देखो! सर्वज्ञभगवान की वाणीरूप इस प्रवचनसार की 13 वीं गाथा में शुद्धोपयोग के फलरूप शुद्धात्म प्राप्ति की (और उसके महान अतीन्द्रिय सुख की) प्रशंसा करते हैं। ऐसा महान सुखमय शुद्धात्म-प्राप्ति का साधन शुद्धोपयोग है। उस शुद्धोपयोग बिना अन्य किसी कारण की अपेक्षा बिना आत्मा स्वयंमेव छह कारकरूप होकर केवलज्ञानरूप परिणमित होता है। शुद्धोपयोगी आत्मा स्वयं अपने आत्मा के ही आधीन स्वतंत्ररूप से केवलज्ञानरूप होता है अर्थात् शुद्धात्मस्वभाव को प्राप्त करता है।

शुद्धोपयोग दशा चौथे गुणस्थान में होती है। धर्म का प्रारंभ ही शुद्धोपयोग द्वारा होता है,

चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है, परंतु कभी-कभी होता है; कई बार अल्पकाल पश्चात् भी होता है; पश्चात् पाँचवें गुणस्थान में विशेष शुद्धोपयोग है, वह थोड़े-थोड़े काल के अंतर से होता है। पश्चात् मुनिदशा में तो बारंबार अंतर्मुहूर्त में ही निर्विकल्प शुद्ध उपयोग हुआ करता है। अहा! शुद्धोपयोग दशा की क्या बात! शुद्धोपयोगी निर्विकल्परूप से स्वयं की सिद्ध भगवान जैसे आनंदरूप अनुभव करता है—ऐसा शुद्धोपयोग ही धर्म है, यही केवलज्ञान का साधन है, ऐसे शुद्धोपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी साधन की अपेक्षा केवलज्ञान प्राप्ति में नहीं है। अन्य किसी साधन द्वारा केवलज्ञान करना चाहे, सम्यग्दर्शन करना चाहे, तो उसे धर्म अथवा धर्म के साधन का ज्ञान नहीं है। राग से पार शुद्धोपयोग अपूर्व है, उसका फल भी अपूर्वआनंद है। ऐसा शुद्धोपयोग और उसका फल अत्यंत प्रशंसनीय है... उसमें उत्साह करनेयोग्य है।

ऐसा शुद्धोपयोग स्वयं में हो तब 'धर्म हुआ' कहा जाता है। उसने श्रुतज्ञान को पहिचाना कहा जाता है। श्रुतज्ञानरूप जिनवाणी तो पर से भिन्न आत्मा दिखाकर शुद्धोपयोग करती है। शुद्धोपयोग होकर जिसने ज्ञानस्वभाव का अनुभव किया, उसने ही श्रुतज्ञान को जाना है। श्रुतज्ञान का फल ज्ञानस्वभाव का अनुभव है। जिसने ज्ञान का अनुभव नहीं किया, उसका श्रुतज्ञान सच्चा नहीं; कदाचित् 11 अंग को जानता हो तो भी उसके ज्ञान को सच्चा ज्ञान नहीं कहते, क्योंकि वह मोक्षमार्ग का साधन नहीं। ज्ञानस्वभाव की ओर झुककर राग से जो पृथक् हुआ, वही सच्चा ज्ञान है, वही मोक्षमार्ग का साधन है और ऐसे ज्ञान की उत्पत्ति शुद्धोपयोगपूर्वक ही होती है। अत: आचार्यदेव कहते हैं कि जीवो! परम आनंद की प्राप्ति के लिये ऐसे शुद्धोपयोगरूप तुम परिणमित होओ... उसका यह अवसर है।

पृथक हो

हे जीव! शरीर छूटने का अवसर आने के पहले तू राग से पृथक् हो जा। राग से पृथक् हो जायेगा तो देह छूटने के समय तुझे दु:ख नहीं होगा; राग से पार आनंद का वेदन करते-करते तेरा देह छूट जायेगा।

सामायिक में आत्मा ही समीप है

परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त हुआ परमात्मा

हमारी सर्व पर्यायों में सदा परम आत्मा अत्यंत समीप है; हमारी किसी भी पर्याय में हमें परमात्मा का विरह नहीं है। जहाँ आत्मा समीप नहीं, वहाँ सामायिक कभी नहीं होती, जिसकी दृष्टि में शुद्धात्मा वर्तता है, उसे सदा सामायिक होती है।

[नियमसार, गाथा 127 के प्रवचन से]

केवली भगवान के शासन में सामायिकवंत धर्मी जीव कैसा होता है ? सो कहते हैं : कि उसके श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में, संयम, तप में, सर्व पर्यायों में अपना आत्मा ही उपादेय है; वही उसे समीप वर्तता है। कारणस्वभावरूप परमात्मा की समीपता द्वारा ही सच्ची सामायिक होती है।

ऐसे धर्मी जीव को यहाँ भावी जिन का दृष्टांत दिया है। अहो, अल्पकाल में जिन्हें सर्वज्ञपरमेश्वर होना है, ऐसे भावी जिन को और सर्व सम्यग्दृष्टियों को संयम-तप में सदा आत्मा ही समीप वर्तता है; उन्हें शुभराग की समीपता नहीं है, वह तो भिन्न वर्तता है अर्थात् दूर है और परमस्वभावी आत्मा ही सर्व निर्मल पर्यायों में तन्मयरूप से वर्तता है, अतः वही अत्यंत समीप है।

धर्मी कहता है कि अहो, हमारा परमात्मतत्त्व हमारी पर्याय से कभी दूर नहीं होता; परमगुरु के प्रसाद से हमारा परमात्मतत्त्व हमें प्राप्त हुआ है। उस परमात्मा का हमारी सभी पर्यायों में साथ है। जब राग की प्रीति थी, तब परमात्मतत्त्व दूर था, तब जीव को सामायिकभाव नहीं था। अब जब परमात्मतत्त्व का अनुभव हुआ और पर्याय उसमें एकत्वरूप होकर परिणमित हुई, तब राग-द्वेष उसमें से दूर हुआ, इसलिये उसे आत्मा की समीपता से सदा सामायिक है। अहा! जिसकी पर्याय-पर्याय में भगवान वर्तता है, उसे ही जैनशासन में सामायिक कही है। भगवान को जिसने विस्मरण किया, उसे सामायिक कैसी ? आत्मा से

परांङ्मुख होकर चाहे जितने व्रत-तप-संयम करे परंतु इससे कहीं जीव को समता नहीं होती, सामायिक नहीं होती, धर्म नहीं होता। सच्चे धर्म की जो भी क्रिया है अर्थात् सामायिक आदि जो कोई निर्मल पर्याय है, वे सर्व आत्मा के समीप वर्तती हैं, आत्मा के सन्मुख होकर जो वीतरागपर्याय परिणमित हुई, वही धर्म है। जो आत्मा से विमुख वर्तता है, उसे धर्म कैसा ? और समता कैसी ? आत्मा क्या है, उसका जिसे ज्ञान नहीं है, उसे आत्मा की समीपता कैसी और सामायिक कैसी ?

अहो! चैतन्य परमतत्त्व धर्मात्मा की स्वानुभूति में जयवंत वर्तता है। जिसमें से रागादिभावों के भव का परिचय बिलकुल छूट गया है, उसमें तो अपने चैतन्य-परमेश्वर का ही परिचय है। अरे, चैतन्य के भाव में भव कैसा ? हे जीव! परमचैतन्य-सन्मुख चेतना को जागृत करके ऐसा पुरुषार्थ कर कि एक क्षण में भीतर चिदानंदस्वभाव में प्रवेश कर... तथा परभावों से पृथक् हो जा। शुद्धतत्त्व को जानकर उसमें एकाग्रता द्वारा सामायिक होती है। स्वाश्रित शुद्धपरिणति, वही सामायिक है, उसमें आत्मा की प्राप्ति है। टंकोत्कीर्ण निजमहिमा में लीन ऐसे शुद्धतत्त्व को सम्यग्दृष्टि साक्षात् जानता है। तीर्थंकरों, गणधरों, संत मुनिवरों के अंतर में जो सदा स्थित है, ऐसा परम महिमावंत चैतन्यतत्त्व भी मुझे अनुभूतिगम्य है; इसप्रकार सम्यग्दृष्टि अनुभव करता है। स्वयं अपने को प्रत्यक्ष हो-ऐसा ही मेरा स्वभाव है। ऐसे अपने आत्मा से विमुख होने पर कभी कल्याण नहीं होता। अपने महान तत्त्व को ज्ञान में समीप करके अर्थात् स्वानुभवगोचर करके अपूर्व कल्याण होता है। ऐसा आत्मा अगोचर वस्तु नहीं है; वह इन्द्रियज्ञान से अगोचर होते हुए भी, सम्यग्दृष्टि के अनुभवज्ञान में आनंदसहित गोचर होता है।

अहो! श्रीगुरु के उपदेश द्वारा ऐसा आत्मा एक बार दृष्टि में लिया, तब सर्व-पर्यायों में वही मुख्य रहता है, वही ऊर्ध्व है। चैतन्यस्वभाव की सन्मुखता द्वारा भवभय का हरण करनेवाला वह जीव राग का नाश करनेवाला अभिराम है-सुंदर है-मोक्षमार्ग में शोभित होता, है। राग द्वारा जीव की सुंदरता नहीं है। राग के अभाव द्वारा जो स्वाश्रित समभाव प्रगट हुआ उसके द्वारा जीव की सुंदरता है।

श्रीगुरु का उपदेश भी यह है कि तेरे परिणाम में तू चैतन्यस्वभावी आत्मा को ही मुख्य रख, उसे ही समीप रख, उसमें ही एकता कर; इसके सिवाय अन्य सर्व को दूर रख। अपने में

ऐसे आनंदमय शुद्धात्मतत्त्व की आनंदमय अनुभूति हुई, वही परम गुरुओं का प्रसाद है। अहो, परम गुरुओं ने प्रसन्न होकर हमें ऐसे शुद्धात्मा का प्रसाद प्रदान किया है। उनके अनुग्रह द्वारा हमें जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश मिला, उससे हमें स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव प्रगट हुआ है।

अहा! ऐसा सुंदर वीतरागमार्ग! वह तो स्वाश्रय द्वारा ही शोभित होता है; पराश्रितभाव तो अशुद्ध हैं, वे वीतरागमार्ग में शोभित नहीं होते। सम्यक्त्वज्ञान-सुख इत्यादि अनंत गुणों का जो भाव है, वह सब आत्मा के स्वभाव के आश्रय से ही है, और उस स्वाश्रित शुद्धपरिणाम में ही सामायिक है। पराश्रित रागादिभाव तो अशुद्ध हैं, उनमें सामायिक नहीं है, समता नहीं है; उनमें तो विषमता है।

भावी तीर्थाधिनाथ तो आत्मा के आश्रय से भवभय का हरण करके सहज समता को प्रगट करते हैं। शुद्धदृष्टिवंत भावी तीर्थंकर आत्मा की ऊर्ध्वता द्वारा भवभय का हरण करनेवाले और रागरहित होने से अभिराम हैं-सुंदर हैं; उनके समस्त परिणाम शुद्धात्मा के ही समीप वर्तते हैं, अतः उन्हें सहज समतारूप सामायिक वर्तती है। तीर्थनायक के उत्कृष्ट उदाहरण द्वारा सब सम्यग्दृष्टि जीवों की शुद्धदृष्टि में कैसा शुद्ध आत्मा है, यह समझाया है। धर्मात्मा के सब परिणामों में अपना शुद्ध कारणपरमात्मा ही समीप है। निजस्वभाव के गाढ़ आलिंगन द्वारा उसकी पर्यायें पुष्ट हुई हैं। इसप्रकार वह भावि जिन भगवान निजस्वभाव के समीप होकर परभावों से पराङ्मुख हुआ और स्वयं वीतरागी साक्षात् जिन हुआ।

इसप्रकार पुराणपुरुषों का स्मरण करके मुनिराज कहते हैं कि अहो! हमारे भगवंतों ने इसप्रकार कार्य किया; और हम भी ऐसा करते-करते भगवान के मार्ग में (मुक्तिपुरी में) जा रहे हैं।

चैतन्यभाव को विकल्प के साथ कर्ता-कर्मपना नहीं है

धर्मात्मा समस्त राग-विकल्पों से भिन्न ऐसे चैतन्यभावरूप होकर स्वयं को चैतन्यभावरूप ही अनुभव करता है। राग से भिन्न ऐसे चैतन्यभाव को रागादि के साथ कोई संबंध नहीं है। ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता के ऐसे भानपूर्वक धर्मी जीव अपने में अपार समयसार का अनुभव करता है—उसका यह आनंदकारी वर्णन है... अनुभूति के गंभीर रहस्यों को वह प्रसिद्ध करता है।

यह सम्यग्दर्शन का अधिकार है। यहाँ बतलाते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा का कैसा अनुभव करता है। 144 वीं गाथा से पूर्व कलश 92वें पर प्रवचन।

आत्मा चित्स्वभाव है, उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों चित्स्वभाव से ही होते हैं। चित्स्वभाव द्वारा ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव किये जाते हैं, इसलिये चैतन्य के उत्पाद-व्यय में अथवा ध्रुव में परद्रव्य या विकल्प का अभाव है। पर द्वारा अथवा विकल्प द्वारा चैतन्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव नहीं किये जाते; चैतन्यभाव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को रागादिक के साथ कर्ता-कर्म का संबंध नहीं है; अर्थात् धर्मी जीव कर्ता होकर अपने चैतन्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को करता है परंतु वह रागादि को नहीं करता।

भाई! तू चैतन्यभाव से भरा हुआ भगवान है, उसकी दृष्टि कर। शेष अन्य सबको भूल जा। तू शरीर, मकान इत्यादि का कर्ता नहीं है, रागादि का भी कर्तृत्व तेरे चैतन्यभाव में नहीं है। चैतन्यस्वभाव का अनुभव करनेवाले धर्मी जीव को 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसे विकल्पों का पक्ष नहीं है अर्थात् उनका कर्तापना नहीं है। 'मेरी चैतन्यवस्तु पुण्य-पाप से रहित वस्तु है' ऐसे चैतन्यभावरूप से स्वयं को लक्ष्य में लिया, तब उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों चैतन्यरूप हुए, राग विकल्प उसमें नहीं आया। जिस पर्याय ने चैतन्यभाव का निर्णय किया, वह पर्याय भी चैतन्यरूप हुई और राग से भिन्न हो गई।

पर्याय जब अंतर्मुख हुई, तब द्रव्य-पर्याय दोनों का अनुभव एक साथ होता है—ऐसा

कहा। पर्याय अंतर्मुख हुई, तब ध्रुवस्वभाव का भी भान हुआ। पर्याय अंतर में लीन हुए बिना ध्रुवस्वभाव को ज्ञेय कौन बनाये ? पर्याय अंतर्मुख हुई, तब मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों में मेरा चैतन्यस्वभाव व्याप्त होता है' इसप्रकार भान हुआ। उसने स्वघर को देखा। यह द्रव्य और यह पर्याय ऐसा भेद या विकल्प अनुभूति में नहीं है। ऐसी अभेद निर्विकल्प अनुभूति सहित सम्यग्दर्शन होता है।

अहो! आचार्यभगवंत तो चलते-फिरते सिद्ध जैसे थे, उनकी वाणी में अमृत भरा है, उन्होंने अनुभव का अलौकिक वर्णन किया है। भाई, अब यह समझने का अवसर है। यदि अपनी वस्तु को नहीं समझे तो जन्म-मरण का अंत कैसे आवेगा ? तेरे चैतन्य का उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो तेरे चैतन्यभाव द्वारा होता है या रागभाव द्वारा होता है ? भाई, यह समझने के लिये बाह्य जैसे शरीर आदि की क्या आवश्यकता है ? पैसा हो, शरीर निरोग हो तो ही यह बात समझी जा सके, ऐसी कोई बात नहीं है। स्वयं की पर्याय अंतर में ले जाने पर स्वयं के चैतन्यभाव द्वारा ही आत्मा समझा जाता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनोंरूप एक वस्तु है। उत्पाद-व्यय भिन्न और ध्रुव भिन्न वस्तु है—ऐसा यहाँ नहीं कहा है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों से भावित चैतन्यवस्तु एक है। पर्याय ध्रुव में लीन हुई है। ऐसे स्वघर में आये बिना जीव को शांति की प्राप्ति नहीं होती। परघर में शांति मानी है परंतु उसमें केवल दु:ख है। उसमें दु:ख और अशांति लगे तो स्वघर की ओरे झुके और चैतन्य की वीतरागी शांति का वेदन करे तो उस शांति के समक्ष उसे पुण्य-पाप अग्नि की भट्टी जैसा प्रतीत हों। चैतन्य की शांति के वेदन बिना शुभराग की अशांति का यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

केवली भगवान चैतन्यभावरूप से रहकर स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुव को करते हैं। उसीप्रकार साधक धर्मी भी चैतन्यभावरूप ही स्वयं के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को करते हैं। रागादिभावों से चैतन्यभाव भिन्न है, उस राग के साथ धर्मी के चैतन्यभाव को कर्ता-कर्मपना नहीं है। एक शुद्धनय के विकल्प का भी कर्तापना जिसके ज्ञान में रहे, उसने शुद्धात्मारूप समयसार का अनुभव नहीं किया है। शुद्ध आत्मा नयों के विकल्पों से पार है, उसमें विकल्प का कर्ता-कर्मपना कैसा ?

'चैतन्यस्वभाव मैं हूँ' इसप्रकार स्वसन्मुख होकर पर्याय निर्णय करती है। पर्याय स्वसन्मुख हुए बिना स्वभाव का निर्णय किसने किया ? अहो, चैतन्यस्वभाव अपार है-जिसके

गुणों का पार नहीं है, जिसकी महिमा का पार नहीं है—ऐसा 'समयसार मैं हूँ'; इसप्रकार धर्मी अनुभव करता है। समस्त बंध-पद्धति को छोड़कर मैं आत्मा का अनुभव करता हूँ—अर्थात् पर्याय ने जब अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा का अनुभव किया, तब उसमें बंधपद्धति (शुभाशुभ विकल्प) ही नहीं रहती। ज्ञान उससे पृथक् हो गया अर्थात् उसने बंधपद्धति को छोड़ दिया, इसप्रकार कहा जाता है।

उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों भेद अनुभव में नहीं रहते; तीनरूप ही चैतन्यवस्तु है, उसके अनुभव में विकल्प का जाल उत्पन्न नहीं होता। ऐसे अपार समयसार को स्वसंवेदन में साक्षात् करके धर्मी कहता है कि हम अपने अपार चैतन्यतत्त्व को बंधभावों से भिन्न ही अनुभव करते हैं। उस अनुभव में 'ध्रुव हूँ-एक हूँ' ऐसे भी विकल्प नहीं रहते। शुद्धात्मा को मैं विकल्प के द्वारा अनुभव नहीं करता परंतु चैतन्यभाव द्वारा ही अनुभव करता हूँ।

निर्विकल्प अनुभव होने पर, केवलज्ञानादि अपार गुणवाले समयसाररूपी परमात्मा का अनुभव ही वर्तता है, उसमें पर्याय भी सम्मिलित है। परंतु 'यह पर्याय है' और 'मैं अनुभव करता हूँ' ऐसा कोई भेद-विकल्प वहाँ नहीं रहता। 'यह द्रव्य, यह पर्याय' ऐसे भेद के विकल्प अनुभव में नहीं रहते। विकल्प में तो आकुलता है। अनुभव में निर्विकल्प आनंद का वेदन है। देखो, यह सम्यग्दर्शन होने की दशा का वर्णन है। मुनिपना इत्यादि तो सम्यग्दर्शन पूर्वक की बहुत श्रेष्ठ वीतरागदशा है; परंतु सम्यग्दर्शन के अनुभव की दशा भी अलौकिक है।

ऐसा सम्यग्दर्शन किसप्रकार हो, उसकी अपूर्व बात इस 144वीं गाथा में आचार्यदेव ने समझायी है। जो यथार्थ में समस्त नयपक्षों द्वारा खंडित नहीं होता अर्थात् जिसकी अनुभूति में समस्त विकल्प-व्यापार रुक गया है, ऐसी अनुभूतिरूप परिणमित आत्मा को 'समयसार' कह जाता है। देखो, शुद्धपरिणतिरूप परिणमित आत्मा को समयसार कहा जाता है। उसे ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनुभूति आदि नामों से कहा जाता है। अकेले द्रव्य को समयसार नहीं कहा है परंतु शुद्धपर्यायरूप से परिणमित आत्मा को ही समयसार कहा है।

विकल्पातीत, ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप आत्मा वही सम्यग्दर्शन है, वही समयसार है

ज्ञान की अनुभूतिरूप हुआ आत्मा विकल्पों से भिन्न है, वह समयसार है। स्वभाव से तो सदा शुद्ध है, पर्याय में शुद्ध होकर अनुभव किया, तब उसे समयसार कहा। वह नयपक्ष के

विकल्पों द्वारा खंडित नहीं होता क्योंकि वह विकल्पों से भिन्न ही है, उसमें विकल्प का प्रवेश ही नहीं है। ऐसे समयसार को ही सम्यग्दर्शन आदि नाम दिये जाते हैं। वह अलौकिक वस्तु है, किसी अन्य द्वारा उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। संयोग द्वारा अथवा शुभराग द्वारा सम्यग्दर्शन का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

सम्यग्दर्शन के लिये प्रथम तो अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना, वह निर्णय किसी विकल्प के अवलंबन करके नहीं परंतु श्रुतज्ञान के अवलंबन द्वारा ही होता है। ज्ञानस्वभाव विकल्प से पार है, उसे निर्णय में लेने पर मति-श्रुतज्ञान इन्द्रिय-मन से छूटकर अंतर में स्वभावसन्मुख होकर आत्मा का अनुभव करते हैं-सम्यक्रूप से देखते हैं और श्रद्धा करते हैं; वहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। ऐसे भावस्वरूप हुए आत्मा को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नाम मिलता है। उसने ज्ञान की जातिरूप होकर ज्ञान का अनुभव किया, आनंद के वेदन सहित ज्ञान की अनुभूति हुई, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

शुद्ध या अशुद्ध, एक या अनेक, ऐसे नय के विकल्प तो दु:खरूप हैं, आकुलता है, आत्मा की अनुभूति करनेवाला जीव अंतर्मुख ज्ञान द्वारा उन समस्त नयपक्षों को लाँघ गया है। जिसने ऐसी अनुभूति की है, वह जीव सिद्ध की पंक्ति में बैठा, और अब आत्मा के हित का व्यापार करेगा, अर्थात् सम्यग्दर्शन के पश्चात् चारित्र-वीतरागता और केवलज्ञान का वह साधन करेगा। यह तो संतों के अंतर की बातें हैं।

अहो! समयसार अर्थात् भरतक्षेत्र में केवलज्ञान का दीपक... जिसका प्रतिभास आत्मा की अनुभूति प्रदान करता है। यह समयसार तो आत्मा के अनुभव को प्रकाशित करनेवाला अद्वितीय दीपक है। जगत माने या न माने, उसके साथ धर्मी को क्या संबंध? फूल स्वयं स्वभाव से सुगंधित है, वह जंगल में हो या गाँव के बीच हो, कोई उसकी सुगंध को सूंघे अथवा न सूंघे, उसके साथ फूल को संबंध नहीं है, वह तो अपने स्वभाव से सुगंधित रूप से खिलता है; सुगंधरूप से खिलना, वह उसका स्वभाव ही है; उसीप्रकार धर्मी जीव स्वयं की शांति को स्वयं में वेदन करता है। बाह्य में पुण्य का ठाठ हो अथवा न हो, लोग मुझे मानें अथवा न मानें, उसके साथ धर्मी की शांति का संबंध नहीं है, वह तो अपने आत्मा के लिये ही अपने स्वभाव से शांतभावरूप परिणमता है और स्वयं की शांति का वेदन करके तृप्त होता है। अन्य माने तो शांति

हो—ऐसी कोई बात नहीं है।

जीव को स्वयं के हित के लिये प्रथम क्या करना? कि 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' इसप्रकार निर्णय करके उसका अनुभव करना। संतों ने श्रुत में जैसा कहा है, वैसा ज्ञानस्वभाव श्रुतज्ञान के अवलंबन से निर्णय करना। पुण्य-पाप के विकल्प मैं नहीं, मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ—इसप्रकार प्रथम से निर्णय करना। भाई! इस देह की डोली तो डोल रही है-क्षणभर में वह गिर जाएगी तो उससे भिन्न ज्ञानस्वभाव आत्मा तू है, इस प्रकार निर्णय कर।

ज्ञानस्वभाव के निर्णय की शक्ति विकल्प से पार है

आहा! ऐसे स्वरूप को सुनकर उसका निर्णय करने का क्षण भी कोई भिन्न जाति का है। निर्णय करते समय विकल्प हो परंतु उस ही समय विकल्प को उल्लंघनीय है—ऐसा निर्णय में लेता है। यह विकल्प रखनेयोग्य है-ऐसा निर्णय नहीं किया, परंतु यह विकल्प छोड़नेयोग्य है—इसप्रकार निर्णय में लिया है अर्थात् विकल्प से भिन्न ज्ञान निर्णय में लिया है। संतों का जो उपदेश है, वह भी ज्ञान और विकल्प की भिन्नता बताकर विकल्प छुड़ाने के लिये है। पहले ही विकल्प से भिन्न ज्ञानस्वभाव को लक्ष में लेकर प्रारंभ किया है, वह जीव विकल्प का उल्लंघन करके, ज्ञान को अंतर्मुख करके साक्षात् निर्विकल्प अनुभव करता है। संतों का अभिप्राय विकल्प छुड़वाने का है और श्रोता भी उनका अभिप्राय समझकर सुनता है अर्थात् सुनने के काल में भी सुनने के विकल्प पर उसका जोर नहीं है, परंतु 'विकल्प से पार चैतन्यतत्त्व संत कहते हैं' उस ध्येय पर उसका जोर जाता है। इसप्रकार ज्ञान और विकल्प की भिन्नता के लक्ष्ये से प्रारंभ करके जीव विकल्प तोड़कर ज्ञानस्वभाव का अनुभव करता है।

अनुभवी संतों की वाणी, वह आगम है, जिसमें ज्ञानस्वभाव विकल्प से भिन्न बतलाया है। ऐसे श्रुत को सुनते समय विकल्प है, परंतु वह विकल्प रखने के लिये नहीं है परंतु छोड़ने के लिये है-ऐसा उसका निर्णय है; इसलिये निर्णय में अवलंबन का अभिप्राय नहीं है परंतु विकल्प छोड़कर ज्ञानस्वभाव के अवलंबन का ही अभिप्राय है। विकल्प वह कोई निर्विकल्प अनुभव का कारण नहीं है; ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने पर विकल्प टूट जायेगा, इसप्रकार उसको लक्ष्य में लिया है। 'ज्ञानस्वभाव हूँ' ऐसा निर्णय कब हो? कि विकल्प, वह मेरे स्वभाव का कार्य नहीं है—ऐसा निर्णय करे, तब ज्ञानस्वभाव का निर्णय होता है।

अहो, निर्णय में कितनी शक्ति है! विकल्प से लाभ माने, वह निर्णय सच्चा नहीं।

'ज्ञानस्वभाव' का निर्णय ही तब होता है कि जब विकल्प से भिन्न हो; क्योंकि ज्ञानस्वभाव में विकल्प की तो नास्ति ही है। भाई! आत्मा के अनुभव की बात निराली है—जिसका निर्णय करने पर सारी दुनिया का रस उड़ जाता है; सारी दुनिया फिरे तो भी उसका निर्णय न फिरे—क्योंकि उस निर्णय में ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है, अन्य किसी का अवलंबन उसमें नहीं है। भाई! एक बार हृदय को दृढ़ रखकर ऐसे ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर। 'ज्ञानस्वभाव मैं हूँ' ऐसा निर्णय करे, वहाँ राग की-पुण्य की-संयोग की उमंग न रहे, क्योंकि उससे भिन्न ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना है, वह निर्णय करने के लिये अंतरस्वभाव की ओर ज्ञान ढलता है। बीच में विकल्प होता है परंतु ज्ञान का झुकाव विकल्प की ओर नहीं है, ज्ञान का झुकाव ज्ञानस्वभाव की ओर ही है, वह ज्ञान कहीं विकल्प की रचना नहीं करता, भिन्न रहता है। [ज्ञानस्वभाव के अपूर्व निर्णय की बात सुनते मुमुक्षु हर्षित हो जाते हैं और कहते हैं कि अहो! आत्मा के अनुभव की बिल्कुल सुंदर बात है!]

भगवान! तेरे स्वभाव के निर्णय की बात भी अपूर्व है। ज्ञानस्वभाव का निर्णय करनेवाले को अन्य किसी की महिमा नहीं रहती है अथवा अन्य द्वारा अपनी महत्ता नहीं भासित होती है। अहो! ऐसा ज्ञानस्वभाव प्रसिद्ध करके 'आत्मख्याति' में आचार्यदेव ने अद्भुत कार्य किया है! भाई! ज्ञानस्वभाव का निर्णय करने जाएगा तो विकल्पों में से तेरी बुद्धि हट जायेगी। ऐसा निर्णय करता है, वह ज्ञानस्वभाव तरफ झुककर निर्विकल्प अनुभव करता है। अहो! चैतन्य के अनंत किरणों का प्रकाश अनुभव में झलक उठता है... अनंत गुण की किरणें एक साथ प्रस्फुटित होती हैं। जिस अनुभूति में भगवान प्रगट हुआ, उसकी क्या बात? भाई! तेरी अनुभूति में तेरा चैतन्यभगवान न आवे और मात्र पामरतारूप ही तू अपने को देखता है तो तूने तेरा सच्चा आत्मा नहीं देखा है, भगवान के द्वारा कहे गये ज्ञानस्वभाव को तूने निर्णय में भी नहीं लिया है। अरे! एकबार ज्ञानस्वभाव को लक्ष में लेकर उसका निर्णय तो कर। निर्णय में सच्चा स्वरूप जाने बिना तू अनुभव किसप्रकार करेगा? अत: कहा कि प्रथम ही ज्ञानस्वभाव आत्मा का निर्णय करना।

यह बात कोई साधारण नहीं है, यह तो अंतर के स्वभाव को अनुभव में लेकर पर्याय में प्रसिद्ध करने की अपूर्व बात है। मोक्षलक्ष्मी के लिये यह केवली प्रभु का कथन है। स्वभाव के गंभीर भाव इसमें भरे हैं। जिसको लक्ष्य में लेने पर रागरहित अनुभूति में आत्मा का साक्षात्कार

हो, परमेश्वर आत्मा अपनी पर्याय में प्रसिद्ध हो, ऐसा स्वभाव बताया है। इस टीका का नाम भी 'आत्मख्याति' है; आत्मख्याति अर्थात् आत्मा की प्रसिद्धि, आत्मा की अनुभूति किसप्रकार हो, वह आचार्यभगवान ने इसमें बतलाया है।

ज्ञानस्वभाव का निर्णय करने के पश्चात् साक्षात् अनुभव किसप्रकार हो ? यह अद्भुत शैली से समझाया है। निर्णय करनेवाला जीव अपने मति-श्रुतज्ञान को आत्म-सन्मुख करता है। विकल्प तो परसन्मुख है; वह आत्मसन्मुख नहीं हो सकता। विकल्प से पृथक् होकर अतीन्द्रिय हुआ ज्ञान ही आत्मसन्मुख होता है, और वह ज्ञान निर्विकल्प विज्ञानघन आत्मा का साक्षात् अनुभव करता है—ऐसी अनुभूति ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, वही अतीन्द्रिय आनंद है; उसमें एक ही साथ अनंत गुणों की निर्मलता की अनुभूति है, अतः जो कुछ भी कहो, वह सब इस एक अनुभूति में ही समाविष्ट होता है—ऐसी अनुभूतिस्वरूप हुआ आत्मा ही समयसार है... वही समय का सार है।

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता

आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; वह ज्ञान अपने स्वभाव से ही परिणमित होता हुआ जगत के सर्व ज्ञेयों को जानता है। इसप्रकार ज्ञान को पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेयपना है; परंतु दोनों का परिणमन भिन्न है। ज्ञान, ज्ञानरूप रहता है और ज्ञेय, ज्ञेयरूप से रहते हैं। ज्ञान कहीं ज्ञेयों को जानते हुए उनके साथ एकमेक नहीं हो जाता; परंतु अज्ञानी ऐसा मानता है कि मानों मैं ज्ञेयरूप हो गया हूँ, उसे अनेकांत की खबर नहीं है। परज्ञेय के कारण ज्ञान होता है, ऐसा जो मानता है, उसे भी अनेकांत की खबर नहीं है, उसने ज्ञान को परज्ञेय के साथ एकमेक माना है, वह अज्ञानी है। स्व-पर की एकताबुद्धिरूप एकांत द्वारा अज्ञानी जब नाश को प्राप्त होता है (अर्थात् अपने भिन्न ज्ञान को भूल जाता है), तब अनेकांत उसे ज्ञेयों से भिन्नता बतलाकर ज्ञान का अनुभव कराता है। ऐसा अनुभव करना, वह अनेकांत का फल है।

परज्ञेयों को जानते हुए अज्ञानी ऐसा मानता है कि उनके कारण ही ज्ञान होता है; परंतु ज्ञेय से भिन्नरूप ज्ञान के स्वाधीन अस्तित्व को जाने बिना धर्म नहीं होता।

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातः श्री नियमसारजी तथा दोपहर को श्री समयसारजी शास्त्रों पर आध्यात्मिक प्रवचन हो रहे हैं। सौराष्ट्र में पिछले वर्ष वर्षा की कमी के कारण यद्यपि अकाल की परिस्थिति है; परंतु यहाँ सोनगढ़ में पानी का जरा भी कष्ट नहीं है। जैन अतिथि सेवा-समिति की भोजनशाला में योग्य चार्ज लेकर शुद्ध सात्विक भोजन दिया जाता है; ठहरने आदि की अच्छी सुविधा है। किंतु देश-काल की परिस्थिति को देखते हुए इस वर्ष सोनगढ़ में ग्रीष्मकालीन शिक्षण-शिविर बन्द रखने का निर्णय किया गया है। श्री परमागम मंदिर का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। संगमरमर के पत्थरों पर शास्त्रों की खुदाई का कार्य द्रुतगति से हो रहा है।

आत्मधर्म के ग्राहको से...

आपका प्रिय आध्यात्मिक मासिक पत्र 'आत्मधर्म' नियमितरूप से प्रकाशित होता है। तीन महीने बाद वैशाख महीने से आत्मधर्म का नया वर्ष प्रारंभ होगा। आत्मधर्म का वार्षिक चंदा 4.00) चार रुपया है तथा 101) एक सौ एक रुपये में आजीवन सदस्य बनाये जाते हैं। कई सज्जन भूल से तीन रुपये ही भेजते हैं जिससे व्यवस्था में असुविधा होती है और अंक उन्हें मिलने में विलंब होता है। अतः 4) चार रुपये का ही मनीआर्डर करें। कृपया अपना नाम और पूरा पता साफ अक्षरों में लिखें।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आचार्यकल्प स्व. पंडित टोडरमल स्मृति-समारोह संपन्न

जयपुर में आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री पंडित बाबूभाई फतेपुरवालों की अध्यक्षता में श्री पंडित टोडरमल स्मृति-समारोह बड़े हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया। स्थानीय समाज के तथा बाहर के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने इसमें भाग लिया। श्री पंडित नेमीचंदजी पाटनी, मंत्री ने श्री टोडरमल स्मारक भवन के उद्देश्यों एवं प्रगति पर प्रकाश डाला। श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री

पीएच.डी. ने पंडित टोडरमलजी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनकी आध्यात्मिक महिमा बतलाई। सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीका एवं जयपुर के जैन समाज ने समारोह की सफलता हेतु बड़े उत्साह एवं लगनपूर्वक कार्य किया।

[श्री पंडित हुकमचंदजी का अभिनंदन, जैन साहित्य व पत्र-प्रदर्शनी, साहित्यगोष्ठी आदि के समाचार अन्यत्र छप चुके हैं; हम सामाजिक कथन न छाप सके अतः क्षमायाचना करते हैं। —संपादक]

इंदौर (म.प्र.)—यहाँ पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन टेपरिकार्डों द्वारा प्रतिदिन दो बार सुनाये जाते हैं तथा स्पष्टीकरण पूर्वक समझाया जाता है। एकबार मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन तथा प्रश्नोत्तर आदि चलते हैं। उदासीन आश्रम, तुकोगंज इंदौर के त्यागीगण एवं त्यागी महिलाएँ प्रत्येक कार्यक्रम में उपस्थित रहते हैं। कार्यक्रम इंद्रभवन में ही चलते हैं। यहाँ से तारीख 18-2 को झाबुआ जा रहा हूँ। — ब्रह्मचारी रमेशचंद्र जैन

खंडवा (म.प्र.)—श्री पंडित ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी समाज के आमंत्रण पर पधारे। छह दिन तक प्रतिदिन दो घंटे प्रवचन, तत्त्वचर्चा, टेपरिकार्डों द्वारा पूज्य स्वामीजी के प्रवचन आदि कार्यक्रम चलते रहे। समस्त जैनसमाज ने मुख्यतः नवयुवकों ने भलीभाँति लाभ लिया। यहाँ जैन समाज के ढाई सौ घर हैं। दो जैन स्कूल एवं धार्मिक पाठशाला है। यहाँ आत्मधर्म के 88वार्षिक सदस्य और 7 आजीवन सदस्य हैं। — प्रकाशचंद जैन

राघौगढ़ (म.प्र.)—श्री पंडित धन्नालालजी लश्करवालों के पधारने से 4 दिन तक आध्यात्मिक प्रवचनादि का सुंदर कार्यक्रम चला। समाज ने अच्छा लाभ लिया।

—सुशीलकुमार जैन

वीर (निमाड)—हमारे निमंत्रण पर श्री ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी पधारे। आठ दिन तक प्रतिदिन 4 घंटे का सुंदर कार्यक्रम दिया। प्रवचन, तत्त्वचर्चा, पूज्य स्वामीजी के टेपरिकार्ड आदि का समाज ने अच्छा लाभ लिया। मुमुक्षु मंडल है और प्रतिदिन शास्त्रसभा होती है।

—सुमतिचंद्र जैन

❀ ❀ ❀

परली-बैजनाथ (महाराष्ट्र)—यहाँ ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी गोरे समाज के आमंत्रण पर पधारे। आपने 10 दिन तक जैन शिक्षण-शिविर चलाया जिसमें करीब 150 व्यक्ति प्रतिदिन अध्ययन करते थे। ब्रह्मचारीजी टेपरिकार्डों द्वारा पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनाते थे और स्पष्टता से समझाते थे। तीर्थयात्रा की फिल्म भी दिखायी थी। समाज ने अच्छी तरह लाभ लिया। यहाँ जैनों के 40 घर हैं। प्रतिदिन शास्त्रसभा होती है। —अरविंद जैन

श्री ब्रह्मचारी दीपचंदजी लिखते हैं—मैं परली-बैजनाथ से करमाला, लातूर, बार्शी, भूम, कुन्थलगिरि गया था; कुंथलगिरि में पुनः हाईस्कूल प्रारंभ हुआ है। करमाला में समाज ने बड़े उत्साहपूर्वक कार्यक्रमों में भाग लिया। पुसद (यवतमाल) की जैन समाज में अच्छे उच्च शिक्षा प्राप्त लोग हैं, उन्होंने भी बड़ी रुचिपूर्वक लाभ लिया।

आवश्यक-सूचना

जो संस्थायें श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड द्वारा आयोजित ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं में छात्रों को सम्मिलित करना चाहती हैं, वे परीक्षाबोर्ड कार्यालय जयपुर से प्रवेश-फार्म मंगाकर 30वीं अप्रैल 73 तक भरकर भेज दें। ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं में केवल बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3 तथा वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1-2-3 की ही परीक्षा होगी, अन्य विषयों की नहीं। — मंत्री-परीक्षाबोर्ड, जयपुर

प्रशिक्षण शिविर निश्चित

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर द्वारा आयोजित ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर का आयोजन इस वर्ष विदिशा जैन समाज के आग्रह पर विदिशा नगर (म.प्र.) में होना निश्चित हो चुका है। निश्चित तिथि की सूचना शीघ्र दी जायेगी। फिर भी 25 मई से 25 जून के बीच 20 दिन शिविर के लिए निश्चित होने की संभावना है। —मंत्री-परीक्षाबोर्ड, जयपुर

जैन ट्रस्ट पुरस्कार योजना

जैन ट्रस्ट, कलकत्ता की ओर से आयोजित 'भगवान महावीर और उनके सिद्धांत' पर

पुरस्कार प्रतियोगिता के अंतर्गत भेजने की अंतिम तिथि 31 दिसंबर 1972 थी किंतु अनेक हितैषियों के आग्रह से यह तिथि 31 मार्च, 1973 तक बढ़ाई जाती है। कृपया प्रतियोगी अपनी पुस्तक या पाण्डुलिपि की 4 प्रतियाँ अवश्य पंडित बंशीधर शास्त्री, 24-4842 दरियागंज, दिल्ली-6के नाम व पते पर 31 मार्च 1973 के पूर्व भेज देवें।

निवेदक,
जुगमंदिरदास जैन, ट्रस्टी-जैन ट्रस्ट,
157, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता

अध्यात्म-पद

आतम जानो रे भाई! ॥टेक॥

जैसी उज्जल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया-करमनसौं जुदी रे, सबको करै उदोत॥आतम०॥1॥

शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलपरूप।
निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानंद चिद्रूप॥आतम०॥2॥

तन वचसेती भिन्न कर रे, मनसों निज लौ लाय।
आप आप जब अनुभवै रे, तहां न मन वच काय॥आतम०॥3॥

छहौं दरब नव तत्त्वतैं रे, न्यारो आतमराम।
'द्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिवधाम॥आतम०॥4॥

श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी पर
आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन

(दिनांक 18 मार्च से 23 मार्च 1973 तक)

जगत विख्यात परम पुनीत श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी अनादि काल से दिगम्बर जैन श्रमणों का साधना केंद्र रहा है। णंगाणंग आदि 5 करोड़ मुनिराज इसी स्थान से आत्मसाधना द्वारा मोक्ष पधारे हैं। पर्वतराज स्वर्णगिरि पर शिखरबद्ध, नयनाभिराम, विविध कालीन शिल्पकला के प्रतीक 80 जिनमंदिर, मानस्तंभ, समवसरण आदि की भव्य रचना है। इसके अतिरिक्त पर्वतराज के नीचे 17 दर्शनीय विशाल जिनमंदिर व अनेक धर्मशालायें स्थित हैं। विभिन्न नगरों से वर्षभर साधर्मी बंधु यहाँ वंदना आदि के लिये आते रहते हैं। यहाँ होलिका पर्व से पंचमी तक प्रतिवर्ष वार्षिक मेला लगाया जाता है।

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी वार्षिक मेले के शुभ अवसर पर दिनांक 18 मार्च से 23 मार्च तक पाँच दिवसीय विशाल शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है। इस आयोजन में आध्यात्मिक उपदेष्टा **पंडित श्री बाबूभाईजी फतेपुर, पंडित श्री कनूभाईजी दाहोद, पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित श्री ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित श्री राजमलजी भोपाल, पंडित श्री जवाहरलाजी विदिशा** आदि अनेक विद्वान पधार रहे हैं। अत: सभी साधर्मी महानुभावों से निवेदन है कि इस अवसर पर सपरिवार पधारकर धार्मिक शिक्षण, सिद्धक्षेत्र वंदना, परिक्रमा, भक्ति द्वारा आत्म-संबोधन करते हुए धर्मलाभ लेवें। आध्यात्मिक साहित्य का विक्रय-विभाग भी रहेगा।

दैनिक-मांगलिक कार्यक्रम

प्रात: 5 बजे से 6 बजे तक — 'जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला' भाग-1 पर शिक्षण प्रवचन।
(स्थान—तलहटी मंदिर नं. 1 व 2 पर स्थित शिक्षण शिविर पांडाल में।)

प्रात: 7 बजे से 8 बजे तक — दर्शन, पूजन, वंदना आदि (मंदिर नं. 57 तक)

प्रात: 8 बजे से 9 बजे तक — मानस्तम्भ के नीचे 'मोक्षमार्गप्रकाशक' 9वाँ अधिकार पर प्रवचन।

मध्याह्न 12 बजे से 1 बजे तक	पांडाल में 'छहढाला की तीसरी ढाल पर शिक्षण प्रवचन।
मध्याह्न 1 बजे से 5 बजे तक	विभिन्न रथयात्राओं में भक्ति-भजन व क्षेत्र की परिक्रम आदि।
सायंकाल 7 बजे से 8 बजे तक	पर्वत पर स्थित मंदिर नं. 57 पर सामूहिक भक्ति।
रात्रि 8 बजे से 10 बजे तक	पांडाल में 'श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार' 5वें अधिकार पर प्रवचन।

संयोजक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
चितेरा ओली, माधवगंज, ग्वालियर-1

निवेदक :
श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी पंचायती पुरानी सहेली
श्री सिद्धक्षेत्र, सोनागिर (म.प्र.)

❀ ❀ ❀

पुरुषार्थसिद्धियुपाय—(श्री अमृतचंद्र आचार्य कृत और आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी कृत भाषाटीका) आधुनिक हिन्दी में सर्वांग सुंदर प्रकाशन प्रथम बार होने से और प्रथम से ही ग्राहक बन जाने से प्रकाशित हुआ है। यह ग्रंथ आचार संहितामय है, जिसका अपर नाम जिनागम रहस्य कोष है; सर्वज्ञ वीतराग अहिंसा किसे कहते हैं आदि जिनागम का संक्षिप्त सार तत्त्व आचार्यदेव ने इस ग्रंथ में भर दिया है। मूल्य में भी सस्ता होने से तथा सभी धर्म जिज्ञासुओं के मान्य होने से यह सर्वसम्मत अपूर्व साहित्य है जो देखते ही बनता है। पृष्ठ संख्या-208, मूल्य 2-50, पोस्टेज आदि अलग।

पता— (1) श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
(2) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-4 (राजस्थान)

अज्ञान में जीव कर्म का कर्ता और ज्ञान में अकर्ता है

(सवैया इकतीसा)

जीव अरु पुद्गल करम रहैं एक खेत,
जदपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है।
लक्षन स्वरूप गुन परजै प्रकृति भेद,
दुहू में अनादिही की दुविधा ह्वै रही है।
एते पर भिन्नता न भासै जीव करम की,
जौलौं मिथ्याभाव तौलौं ओंधि बाउ वही है।
ग्यान कै उदोत होत ऐसी सूधी द्रिष्टि भई,
जीव कर्म पिंडकौ अकरतार सही है॥13॥

अर्थ:—यद्यपि जीव और पौद्गलिक कर्म एकक्षेत्रावगाह स्थित हैं तो भी दोनों की जुदी-जुदी सत्ता है। उनके लक्षण, स्वरूप, गुण, पर्याय, स्वभाव में अनादि का ही भेद है। इतने पर भी जब तक मिथ्याभाव का उल्टा विचार चलता है तब जीव-पुद्गल की भिन्नता नहीं भासती, इससे अज्ञानी जीव अपने को कर्म का कर्ता मानता है, पर ज्ञान का उदय होते ही ऐसा सत्य श्रद्धान हुआ कि सचमुच जीव कर्म का कर्ता नहीं है।

अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

—सुरुचिपूर्ण प्रकाशन—

1	समयसार	7.50
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-2)	4.50
8	समयसार प्रवचन (भाग-4)	4.00
9	मुक्ति का मार्ग	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
12	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
13	समयसार पद्यानुवाद	0.25
14	नियमसार (हरिगीत)	0.25
15	द्रव्यसंग्रह	1.20
16	छहढाला (सचित्र)	1.00
17	अध्यात्म-संदेश	1.50
18	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
19	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
20	दशलक्षण धर्म	0.75
21	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
22	मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय)	0.50
23	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
24	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
25	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75
26	सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित)	1.10
27	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
28	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
29	अध्यात्मवाणी	1.00
30	अमृतवाणी	1.10
31	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
32	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
33	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.50
34	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.45
35	बालबोध पाठमाला, भाग-2	1.10
36	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
39	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
40	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
41	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
42	,, ,, (भाग-2)	8.00

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)